नित्यानन्द शास्त्री का हनुमद्दूत (वि० सं० १९८५)

आधुनिक सन्देशकाव्यों में इस सदेश-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में मेघदूत के प्रत्येक पद की चतुर्थ पक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। जोधपुरनिवासी, दाधीचकासल्यगोत्रीय, कविराज तथा आशुकवि श्री नित्यानन्द शास्त्री द्वारा यह काव्य लिखा गया है। लेखक ने काव्य की प्रस्तावना में आषाढ शुक्ल एकादशी वि० स० १९८५ (ता० २८-६-२८) ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है। काव्य के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुये लिखा है—

जात धीरधुरन्धरात्कविमहेन्द्रान्माधवाद् भ्रातृजाद्
राधाकृष्ण समाह्वय यमकृत श्री वैद्यनाथ सुतम् ।
सोऽय योधपुरेन्द्रमाश्रित इम दाधीच-कासल्यको
नित्यानन्दकवि र्व्यधत्त हनुमद्दूत द्विभाषात्मकम् ॥२॥५८॥

इति श्री जोधपुर महाराजाश्रितेन माधवकवीन्द्रतनुजनुषा व्यासश्री-वैद्यनाथनन्दनेन कविराजाशुकविना दाधीचकासल्योपाख्येन श्रीनित्यानन्दशास्त्रिणा रचितं श्री हनुमद्दूतोत्तरार्धं समाप्तम् ।

लेखक को जोधपुर का एक विशिष्ट साहित्यिक माना जाता है। चौपासनी हाई स्कूल जोधपुर में अध्यापन कार्य करने के बाद जोधपुर स्टेट लाइब्रेरी के अध्यक्ष के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। हिन्दी और सस्कृत में समस्यापूर्ति के साथ बहुत सी फुटकर कवितायें भी इन्होंने लिखी हैं। सस्कृत में गगाष्टपदी और लक्ष्मीपट्पदी इत्यादि मुक्तक कवितायें इनकी लिखी हुई हैं। जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित चेतोदूत और मेघदूत समस्यालेख इत्यादि समस्यापूर्तिपरक कतिपय सन्देश काव्यों का इन्होंने सशोधन तथा सपादन किया है। सभव है कि इस सशोधन तथा सपादन कार्य से ही इन्हें भी मेघदूत की समस्यापूर्ति के आधार पर इस सदेशकाव्य के लिखने की प्रेरणा मिली हो। अपने काव्य की प्रस्तावना में इन्होंने लिखा है—

प्रतीतवानस्मि यदानि मुक्तकान्यह समस्यापरिपूर्तिमाश्रयन् ।
कवीन्द्रयशस्यकनिर्मलन्तपि पर निबन्ध कृतवान्न तादृशम् ॥३॥

इत्याकलय्य किल चेतसि कालिदासश्रीमूतदूत-पदपद्य चतुर्थपादान्
विन्यस्य नूर्यचरणस्थलसश्रयेषु काव्य नवं व्यधिषि राघवदूतदूतम् ॥७॥

इन पद्यों में कवि ने मेघदूत के पदों के चतुर्थ पाद को लेकर समस्या पूर्ति परक किसी नवीन सन्देशकाव्य के लिखने की अपनी प्रबल इच्छा व्यक्त की है। उसी के परिणाम-स्वरूप यह सन्देशकाव्य लिखा गया है।

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा वाल्मीकि रामायण से सम्बद्ध है। रामचन्द्रजी के द्वारा हनूमानजी को सीताजी की खोज में लंका भेजने की घटना के आधार पर इस सन्देश काव्य की रचना की गई है। काव्य की कथा इस प्रकार है। प्रस्रवण गिरि पर सुग्रीव इत्यादि के सहित रामचन्द्रजी ठहरे हुए हैं। सीताजी की खोज के लिये विभिन्न दिशाओं में वानरों का दल भेजा जा रहा है। लंका की ओर भेजे जाते हुए हनुमानजी को विशेष बलशाली तथा कुशल देखकर रामचन्द्रजी उनका विशेष स्वागत करते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप अपनी अंगूठी देकर उन्हें सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश भी सुनाते हैं। सन्देश सुनाने से पूर्व लंका तक का मार्ग वर्णित किया गया है। सर्वप्रथम प्रस्रवणगिरि से विन्ध्यपर्वत, वहां से फिर नर्मदा और गोदावरी नदी, तदनन्तर मेकल, उत्कल और दशार्ण देशों में से होते हुये वेत्रवती नदी को पार कर आम्रवन्ती (आम्रवन्ती) नगरी और फिर अवन्ति-नगरी पहुचने का हनुमान्‌जी को परामर्श दिया गया है। वहां से फिर विदर्भ देश और कुण्डिनपुर तथा ऋष्टिक (ऋषिक), माहिष, मत्स्य और कलिंग देशों को देखते हुये कौशिक देश जाने का हनुमान्‌जी को आदेश दिया गया है। तदनन्तर दण्ड कारण्य और गोदावरी नदी को पार कर आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल इत्यादि देशों में से होते हुये मलयपर्वत (अगोमुख), कावेरी नदी और ताम्रपर्णी नदी पर हनुमान्‌जी के पहुचने का उल्लेख किया गया है। ताम्रपर्णी नदी के बाद महेन्द्र-पर्वत तथा उसके किसी उच्च शिखर पर चढकर वहीं से समुद्र को लांघ कर लम्ब नामक पर्वत पर उतरने और वहां से फिर हनुमान्‌जी के लंका पहुचने का वर्णन किया गया है।

इस प्रसंग में लंका नगरी का कुछ वर्णन भी दिया गया है। तदनन्तर नगरी के बाहर ही उद्यान में विशेषतया अशोक या मन्दार वृक्ष के निकट सीताजी की खोज करने का हनुमान्‌जी को परामर्श दिया गया है। उद्यान में एक ओर तडाग, क्रीडा गिरि, अशोक और बकुल वृक्ष बताये गये हैं तथा मध्य में शिंशपा वृक्ष बतलाया गया है। इस शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठकर नगरी में कहीं पर सीताजी के मिलने की सम्भावना करते हुये उनकी विभिन्न विरह चेष्टाओं और अवस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्‌जी को सीताजी के लिये दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश सुनने के बाद हनूमान्‌जी निर्दिष्ट मार्ग से लंका पहुंच कर सीताजी को रामचन्द्रजी का सन्देश सुनाते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप रामचन्द्रजी की अंगूठी भेंट करते हैं। इसके बाद लौटते समय सीताजी का सन्देश और चूडा-मणि लाकर रामचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। तदनन्तर रामचन्द्रजी वानर सेना लेकर लंका पहुचते हैं और रावण को मार कर सीताजी के साथ अयोध्या वापिस लौट आते हैं।

बस, यहा पर ही काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य समीक्षा

यह काव्य वाल्मीकि रामायण और मेघदूत से प्रेरणा लेकर लिखा गया है। कालिदास ने मेघदूत में हनुमान्जी और सीताजी का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसी उदाहरण के आधार पर कवि ने हनुमद्दूत लिखने की प्रेरणा पाई है। इसके अतिरिक्त इस काव्य में मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति भी की गई है। अत मौलिक सन्देश काव्य होने के साथ-साथ मेघदूत की समस्यापूर्ति होने के कारण आधुनिक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। समस्यापूर्ति के कारण, मेघदूतका मन्दाक्रान्ता छन्द ही काव्य में प्रयुक्त हुआ है। काव्य दो भागों में बटा हुआ है। पूर्वभाग में ६८ तथा उत्तरभाग में ५८ श्लोक हैं। पूर्व भाग में मार्गवर्णन तथा दूसरे भाग में लका नगरी का वर्णन, सीताजी की विरह चेष्टायें और विरहावस्थायें तथा अन्त में सन्देश कथन है। काव्य में विप्रलम्भ शृगार ही प्रधान है। विषय, भाव तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत जैसा ही है। इसमें भी एक प्रेमी का अपनी प्रेयसी के लिये प्रणयसन्देश पाया जाता है। मार्गवर्णन इत्यादि सब कुछ मेघदूत जैसा ही है। जिस तरह मेघदूत में प्रत्येक स्थान का शृगार रस-युक्त वर्णन पाया जाता है, उसी तरह इस काव्य में भी तत्तत् स्थानों के वर्णन में शृगार रस का पुट स्पष्ट दिखलाई पडता है। कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुये कवि कहता है-

यत्र प्रोन्मेरतिघनरसाभ्यन्तर पुष्करिण्या
भीमक्रीडासरसिजवनीमारतो मारुतोऽत्र ।
रत्या खेद हरति सुदृशा द्राग् यथा च्युतजिन्या
सिप्रायात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥३३॥

इसी प्रकार अवन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर हनुमान्जी की विभिन्न क्रीडायें देखकर वहा की स्त्रियों की चेष्टाओं का कवि ने बडा मधुर वर्णन किया है-

कापेयेभ्य कपि कुलपते ! कौतुकात्कर्षितेभ्य-
स्तेभ्यस्त्रस्ता रहसि हसितास्याम्बुजा मानवत्य ।
यूनां चित्त स्तनपिठरगैर्यो कटाक्षैर्हरेयु
स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥३०॥

जिस प्रकार मेघदूत में अलका नगरी को शृगार रस का केन्द्र सा वर्णित किया गया है, उसी प्रकार लका नगरी भी शृगार रस के दृष्टिकोण से ही वर्णित की गई है। लका के वर्णन प्रसंग में कवि लिखता है-

सिप्रक्षिप्ताभिगतिविशत शोणित स्रस्तथद्भि
काञ्चीगुणै स्तनपिठलिते रत्नमालीयरत्नै ।

धम्मिल्लाञ्च प्रपतिततरैर्यत्र सन्तानपुष्पै—
नशो मार्गं सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

कैलासाद्रावित्र सुखकर रावणापूर्वभक्ति—
वश्योऽवश्य बहिरुपवने यत्र तिष्ठत्युमेश ।
तद्भीत्या मा धरतु मदनो धन्व, यत् सत्कटाक्षै—
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्ध ॥२॥१२॥

इन पद्यों में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। मेघदूत में यक्ष के घर में वापी का वर्णन किया ही गया है। इसी प्रकार इस काव्य में भी लंका नगरी के बाहर उपवन में एक तटाक का उल्लेख किया गया है—

तत्रैकोऽस्ति स्फटिकरचिताखण्डसोपानपंक्ति
सफुल्लाम्भोरुहसुरभितस्वच्छनीरस्तटाक ।
यद्वास्तव्या इदमयि सखे ! मानस मानसौको
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा ॥२॥१४॥

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने मूल श्लोक के भाव को भी बड़ी सुन्दर रीति से सुरक्षित रक्खा है।

सीताजी की विरह चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने अपनी भावुकता और संवेदनशीलता का अच्छा परिचय दिया है। रामचन्द्रजी सीताजी का वर्णन करते हुये कहते हैं—

ता मे प्राणान् परिचिनु यदिश्चारिणो मारुकीन—
ध्यानैकाग्र्या कमपि न परं प्रेक्षमाणा मृगाक्षान् ।
मद्विश्लेषामयविधुरिता प्राणलीलाशयेव
जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनी वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

सीताजी को रामचन्द्रजी के 'बहिश्चारिण प्राणान्' बताकर कवि ने इन दोनों के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त कर दी है। सीताजी की चिन्ता और उत्कण्ठा का कवि ने एक साथ ही इस श्लोक में बड़ा ही सश्लिष्ट वर्णन किया है। प्रिय विरह में सीताजी किस प्रकार अपने दिन काटती हैं। तनिक इसका भी वर्णन देखिये—

संख्याती-वाऽङ्क लिभिरखिलान् वीतविश्लेषमासा—
नाकारं मे घटजपयसा वाऽनिखन्त्यञ्जपत्रे ।
ध्यायन्ती वर्त्यमिकप्रहित स्वोऽथ वा दूत पथात्
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदा ॥२॥२६॥

वट के दूध से कमल के पत्र पर चित्र बनाने का विचार बड़ा ही सुन्दर है। आगे चल कर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन आता है। इस प्रसग में रामचन्द्रजी कहते हैं—

क्षाम काय खलु तत इत स्थण्डिले लोटयन्ती
दीना हंसीमिव मितजले पक्वशेपे तडागे।
प्रेमालापैरजनि रजनि प्राक् समाश्वासिता मयाया
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥

सीताजी को 'दीना हंसीमिव' उपमा देकर कवि ने उनकी सुकुमारता और कृशता की बड़ी सूक्ष्म व्यजना की है। एक अन्य स्थल पर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सा तन्वगी कुसुममृदुल स्वर्णगौर शरीर
भूपाद्दीन धरणिशयनाद् धूसरित धारयन्ती।
त्वामद्य प्राक् सदयहृदय। स्रावयिष्यत्यवश्य
प्राय सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥२॥३०॥

कुसुम-समान कोमल तथा स्वर्ण समान गौर शरीर को धूलि धूसरित देखकर किस सहृदय के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित न होगी।

सीताजी की विरहावस्था के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को अपना सन्देश सुनाया है। यक्ष की तरह रामचन्द्रजी भी सीताजी के अगों की छटा विभिन्न सुन्दर वस्तुओं में देखने की चेष्टा करते हैं, लेकिन खेद है कि कहीं भी उन्हें सीता जैसा सौन्दर्य नहीं दिखलाई देता। वे कहते हैं—

स्वर्णाभिज्ञन्या सदृचरि। त्वपुर्वत्कदलस्मी हिमाशो
भ्रूसौन्दर्यं धनुषि चमरीवेशभारेषु केशान्।
उद्यद्वेऽहं करटिगमने किंच गत्या विलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने यहा पर कुछ नवीन भावों का समावेश किया है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में रामचन्द्रजी सीताजी को देखते ही हैं कि मुर्गों के उच्च स्वर से उनकी निद्रा भग हो जाती है और उनकी आँखें खुल जाती हैं। इस तरह स्वप्न में भी वे सीताजी के दर्शन नहीं कर पाते—

यावद् यामे रजनि। रजनेरन्तिमे मा कथचिन्
निद्राया स्वन्मिलितसुखद स्वप्न आयाति यावद्।

उच्चैरुन्मीलति सपदि हक् कुक्कुटानां विरावैः
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नो कृतान्त ॥२॥४४॥

इस श्लोक में प्रिय की विवशता और असहायावस्था कितने सुन्दर ढग से चित्रित की गई है। प्राय रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही स्वप्न दिखाई देते हैं और मुर्गा भी तब ही बोलता है। इस तरह मुर्गे के शब्द से स्वप्न का भग हो जाना स्वाभाविक ही है।

सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी कहते हैं कि उनका चित्त बिलकुल निराश्रय हो गया है। किसी भी बात में उसकी रुचि नहीं रह गई है—

स्प्रष्टु नो त्वग्, न निशमयितु श्रोत्रकं, नेक्षितु दृग्
घ्रातु नासा नहि, रसयितु नेच्छतीष्टं च जिह्वा।
यन्मे चित्तं सुमुखि मदभिन्नान्तरात्मस्तवेयं
गाढोष्माभि कृतमशरण त्यद्वियोगव्यथाभि ॥२॥४७॥

विरह में मनुष्य तत्तद् विषयों से विरक्त हो ही जाता है। इस प्रकार सन्देश में अपनी मनोव्यथा बतलाकर अन्त में सीताजी को आश्वासन भी दिया गया है—

नित्यो ह्येष प्रकृतिनियमोऽनित्यता नैति नित्यं
दुःखस्यान्ते सुखमिति सुनिर्धार्य धैर्यं धरेऽहम्।
तस्मान्मा भूस्त्वमपि नितरा कातरा कातराक्षि
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

आगे चल कर फिर कहा गया है—

सीतार्थं किल कृतयत्ना रक्षसोक्ते विरोध-
बीजे नाशक्षयमपगते मत्पतगातिवृष्ट्या।
कामं कामान्पुनरपि शचीन्द्राविवाहा मृगाक्षि!
निर्वेक्ष्याय परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४९॥

इस तरह सीताजी को पुनर्मिलन का आश्वासन देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है।

समग्र काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य भी एक सुन्दर सन्देश काव्य है। मेघदूत की समस्यापूर्ति होते हुये भी काव्य में दुरूहता बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसमें मेघदूत की पंक्ति के मूल भाव को तोड़ा मरोड़ा बहुत कम गया है। दूसरे भावों तथा रस की समानता ने भी काव्य को दुरूह नहीं बनने दिया है। समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुये भी

कवि ने अपनी प्रतिभा का स्थान-स्थान पर पूर्ण चमत्कार दिखाया है। मेघदूत में निर्विन्ध्या नदी के सम्बन्ध में मेघ से कहा गया है—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धु
काश्य येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥१॥३०॥ इत्यादि

मेघदूत के इस पद्य की चतुर्थपंक्ति को लेकर कवि ने क्या ही सुन्दर समस्या पूर्ति की है। रामचन्द्रजी मार्गवर्णन करते हुये हनुमान्‌जी से कहते हैं—

भूयोऽवन्त्या क्षणमिति पुरान्तर्मयैर्मधैस्ते
कल्पातिथ्य कथमपि पुरो द्राक् प्रयातु यतेथा।
यस्मात् सीता चिरविरहज प्रत्यहं वर्धमान।
काश्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥१॥३१॥

नदी के सबन्ध में कहे गये वचन को कवि ने कितनी कुशलता से सीताजी के सबन्ध में जमा दिया है।

अलका नगरी का वर्णन करते हुये मेघदूत में मेघ से कहा गया है—

विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥७॥१॥ इत्यादि

इस पद्य के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति के साथ साथ इस काव्य में भी हनुमान्‌जी और लङ्का में परस्पर तुलना की गई है—

हैमाकारा कनकवपुष साधुकापेयशोभा
सत्कापेय विमलमसिला सोर्मिक सोर्मिकाश्च[1]।
सत्कौपीनाशुकपरिचिताश्चारुकौपीनवस्त्रै
प्रासादास्त्वां तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥८॥१॥

उपर्युक्त पद्य में लङ्का के प्रासादों और हनुमान्‌जी की परस्पर जो तुलना की गई है, वह मेघदूत के अनुकरण का ही परिणाम है। समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने अपनी कल्पना से एक सुन्दर चित्र यहां उपस्थित कर दिया है।

---

[1] साधुका रमणीया अतएव आपेया शोभा येषां ते इति प्रासादपक्षे।
सह विद्यमानं कापेयं कपिकर्म यस्येति हनुमत्पक्षे। सोर्मिका समृद्धाश्च इतिप्रासादपक्षे।
सोर्मिकं साभिप्रायाऽगुलीयकम् इति हनुमत्पक्षे। सत्या प्रशस्ताया कौ
मूमौ पीना विपुला ये अंशुका किरणा ते परिचिता इति प्रासादपक्षे॥

मेघदूत में यक्ष ने अपने घर की पहिचान बताने के बाद कहा है—

छामच्छाय भवनमधुना मद्वियोगेन नूनम्
सूर्य्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२॥१६॥

इस पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुये कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

तस्या नीचैर्युवतिषु समाशास्महे भाग्यशालिन्
सीता चिन्तामणिमिव मणिष्याप्नुयास्ता सचिन्ताम्।
यस्या धत्ते वदनमधुना म्लानता मद्वियोगे
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२॥१६॥

समस्यापूर्ति तो इस पद्य में की ही गई है, वरिक मूल पंक्ति को और भी सुन्दर प्रसंग में जमा दिया गया है। मुख और कमल का सादृश्य तो सर्वविदित ही है, अत यह दृष्टान्तालंकार और भी चमत्कार उत्पन्न करता है।

मेघदूत में यक्ष हिमालय से आती हुई हवाओं का आलिंगन करता है। इसी के अनुकरण पर इस काव्य में भी रामचन्द्रजी के सबध में लिखा गया है—

कृत्वा पूर्वं कमलमुषि ! ये ताम्रपर्ण्यब्धिसग—
तीर्थस्नान विदधति चिर चन्दनारण्ययाम्राम्।
आलिंगन्ते सुरभितवनास्तेऽनिला दाक्षिणात्या'
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

उत्तर दिशा में स्थित रामचन्द्रजी का दक्षिण में स्थित सीताजी की ओर से आने वाली दक्षिण हवाओं का आलिंगन करना उचित ही है। समस्या-पूर्ति के साथ साथ कवि ने हवाओं में भी परिवर्तन कर दिया है।

इस तरह समस्यापूर्ति के दृष्टिकोण से भी यह काव्य बड़ा ही सफल और भावपूर्ण है। कहीं २ मेघदूत के भाव में ही समस्यापूर्ति की गई है और कहीं-कहीं कवि ने अपनी प्रतिभा से भावान्तर का भी समावेश कर दिया है।

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने कहीं कहीं बड़ी सुन्दर कल्पनायें भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। अवन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर क्रीडा करते हुये हनुमान्‌जी को देखकर वहां की स्त्रियों के मन में क्या भाव उठते हैं। जरा इसका भी ध्यान कीजिये—

स्पर्द्धन्तीन्द्र किमयमथवा जंगम पर्वतो वा
पुच्छोत्तुङ्गोच्छ्वलितलसितोऽलौकिकोऽयं कपीन्द्र'।

पश्यन्तीनामतिचकितमिन्यूहनैरङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥१॥२६॥

मेघदूत में मार्ग वर्णन करते समय कहा गया है कि मेघ के गर्जन को सुनकर मानसरोवर की ओर जाने वाले राज हंस उसके सहायक हो जायेंगे। इसी प्रकार इस काव्य में भी राजहंसों का हनुमान्‌जी का सहायक होना बताया गया है। लेकिन यहां वे मानसरोवर की ओर नहीं जा रहे हैं, बल्कि शरद् ऋतु के आजाने के कारण उल्टे मानसरोवर से दक्षिण की ओर आ रहे हैं-

कीशाधीश द्रुतगतिविसार्यूमिकाहीरकाशु-
माला चञ्चा विसकिसलयभ्रान्तित सलिहन्त ।
प्रत्यायान्त शरदुपगमे मानसाद्दक्षिणस्या
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसा सहाया ॥१॥११॥

अगूठी से निकलती हुई किरणमाला को कमलनाल समझकर अपनी चोंचों से चाटते हुये हंसों का हनुमान्‌जी के साथ साथ चलते जाना लेश मात्र भी अरुचिकर नहीं हो सकता। कवि की कल्पना यहां देखते ही बनती है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि यह काव्य वाल्मीकि रामायण से भी प्रेरणा लेकर लिखा गया है, तदनुसार इस काव्य में मार्गवर्णन वाल्मीकि रामायण से बिलकुल मिलता जुलता है (दे० वा० रा० किष्किन्धा काण्ड ४१ वा सर्ग)। काव्य का कथानक तो रामायण की कथा पर आधित है ही। इसके अतिरिक्त कवि ने हनुमान्‌जी द्वारा सीताजी को अपना परिचय देने पर सीताजी की उत्सुकता का वर्णन करते हुये कहा है-

इत्युक्ते सा अगिति दमयन्तीव विप्र पुरोक्ता
सा मान्य त्वा मुदितमनसा वाचिकं श्रोतुकामा ॥२॥३६॥

इस पद्य में दमयन्ती और ब्राह्मण के उदाहरण से यह भी प्रतीत होता है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में नल दमयन्ती की कथा भी जागरूक थी।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक गण को इस काव्य की विशिष्टताओं का परिचय मिल गया होगा। हनुमद्दूत लिखकर कवि ने संदेशकाव्यों की आदिस्रोत रामायण की कथा के प्रति संदेशकाव्यों के रचयिताओं के ऋण को चुका दिया है। संदेशकाव्य के शिल्पविधान के दृष्टिकोण से भी यह काव्य ठीक ही है। हनुमान्‌जी को देखना, उन्हें दूतकार्य में नियुक्त करना, मार्ग बताना, लंका नगरी तथा आवश्यक स्थानों का परिचय देना, सीताजी का वर्णन और सन्देश-कथन सब यथा स्थान इस काव्य में पाया जाता है। विप्रलम्भ शृंगार इस काव्य का मुख्य रस है। राम जैसे

धीरोदात्त नायक तथा सीता जैसी उत्तम नायिका और हनुमान् जैसे कुशलदूत-इन सब ने काव्य को और भी मनोहर बना दिया है। मेघदूत की समस्या पूर्ति यों तो और भी सदेशकाव्यों में पाई जाती है, लेकिन वे प्राय जैनपरम्परा में आते हैं। अत उनका विषय विप्रलम्भ शृगार के क्षेत्र से बाहर है। इसीलिये उनकी समस्यापूर्ति यहाँ जटिल हो गई है। विप्रलम्भ शृगार के प्रसग में आये हुये वाक्य को यथास्थचित तोड मरोड कर उन्होंने शान्त रस में बैठालने की चेष्टा की है। लेकिन इस सदेश काव्य में समस्यापूर्ति करते समय ऐसी कोई क्लिष्टकल्पना नहीं की गई है। भाव तथा रस दोनों काव्यों में समानान्तर ही हैं। अत सन्देश काव्य तथा समस्यापूर्ति इन दोनों के दृष्टिकोण से यह काव्य एक सफल रचना है और पाठकों के हृदय पर कवि की सहृदयता और विद्वत्ता का प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। कवि ने अपनी भूमिका में लिखा है—

कृतिरमरनदीव कालिदासी परमहिमालयसमगाऽमला कव।
मम तु भणितिरिदं धृतेव कुरया कव घनरसातिशयेन हन्त हीना ॥५॥
भवतु सुरसरित्तथापि कुल्या सुरसरिता सह सगता कथचित्।
इति मम कविताऽपि कालिदास सुकवितया मिलिता परिश्रिता स्यात् ॥६॥

कवि के इन वचनों को हम उसकी नम्रोक्ति ही कहेंगे। मेघदूत की स पूर्ति होने के कारण जैनेतर सदेशकाव्यों में इस काव्य का एक विशिष्ट सन्देशकाव्यों के ऐतिहासिक विवेचन में इस काव्य के महत्त्व को क किया जा सकता।

कमल चौधरी द्वारा
सपादित तथा [illegible]।

[illegible] चक्रवर्ती
आर, क[illegible]

—: इति शम् :—